

हिन्दी कथा-साहित्य में किसान और ग्रामीण जीवन तथा उनकी समस्याएँ

पंकज यादव,

शोधार्थी,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास.

विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ०प्र०)

डॉ० प्रमोद कुमार सिंह,

एसोसिएट प्रोफेसर,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास.

विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ०प्र०)

शोध सारांश

भारत का वास्तविक चित्र नगरीय कथाओं के माध्यम से नहीं उतारा जा सकता। इस देश की आत्मा अपनी सत्तर प्रतिशत आबादी वाले गाँवों में बसती है। इसलिए भारत को जानने के लिए यहाँ के गाँव और किसानों को जानना आवश्यक है। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय किसानों एवं ग्रामीण जीवन की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में तीव्रता से परिवर्तन हुआ। सत्ता का विकेन्द्रीयकरण करने के लिए पंचायती राज की स्थापना हुई। आम जनता की आकांक्षाएँ और उम्मीदे बढ़ी। सैकड़ों साल बाद गुलामी से मुक्ति मिली। राजनीतिक और आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए जमींदारी उन्मूलन हुआ। गाँवों के पिछड़े वर्ग में राजनीतिक चेतना का उदय हुआ।

गाँव पहले की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से अधिक समृद्ध हुए, फिर भी गाँवों और किसानों में असंतोष बढ़ा। पंचवर्षी योजनाएँ और सामुदायिक विकास योजनाएँ, कृषि योजनाएँ गाँवों के विकास में अच्छी तरह सहायक नहीं हो पा रही हैं। कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिए नये बीजों और खादों का प्रयोग हो रहा है।

सिंचाई सम्बन्धी सुविधाएँ बढ़ाई गयी हैं, गाँव के व्यक्ति शहरों की ओर मजदूरी, शिक्षा व व्यवसाय के कारण आकर्षित हुए हैं। आज शहरी मूल्यों का गाँवों में प्रवेश हो रहा है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, रिश्तों में फीकापन तथा संवेदना में कमी आई है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, साथ ही एकल परिवार के चलन को बढ़ावा मिला है। गाँवों में उत्सवों, त्योहारों और मेलों के प्रति आकर्षण घटता जा रहा है। पुरानी परम्पराएँ, रूढ़ियाँ और अंधविश्वास अभी भी गाँवों में अपनी जड़े जमाए हुए हैं।

Keywords : सिंचाई, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, राजनीतिक स्थिति, स्वास्थ्य परिस्थितियाँ, बेरोजगारी, पंचवर्षीय योजना, निष्कर्ष आदि।

स्वतन्त्रता के बाद की परिवर्तित इन्हीं परिस्थितियों और उसके प्रभाव तथा उससे उत्पन्न किसान और ग्रामीण जीवन की समस्याओं का अध्ययन स्वतन्त्रोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य के माध्यम से किया जाएगा। एक प्रश्न के जवाब में डॉ० विवेकी राय जी ने कहा था कि— “स्वातंत्र्योत्तर प्रथम दशक वाले कथा-साहित्य में तो ग्राम कथा को

ही हिन्दी कथा साहित्य का सम्मान मिला था और शिवप्रसाद सिंह, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, रामदरश मिश्र, विवेकी राय, श्रीलाल शुक्ल, अमरकान्त, भैरव प्रसाद गुप्त, शैलेश मटियानी और पातूखोलिया आदि एक लम्बी कतार ग्राम कथा पर लिखने वालों की थी। तब सरकार का ध्यान

गाँवों की ओर था। विकास योजनाएँ असली रूप में ग्रामोन्मुख थीं।

“औपनिवेशिक पराधीनता से देश की मुक्ति के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य के सामने नव यथार्थ का एक ऐसा परिदृश्य उपस्थित हुआ, जिसमें उसके बहुमुखी विचरण की अनंत सम्भावनाएँ थीं। उपन्यास अपने समय का साक्षी तो होता ही है; वह समय के साथ यात्रा भी करता है। अपनी इस लम्बी यात्रा में हिन्दी उपन्यास ने देश के बदलते हुए जीवन यथार्थ को उसके पूरे विस्तार और वैविध्य में गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। इस अवधि में परिणाम और प्रकार दोनों दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास का अभूतपूर्व विकास हुआ है। शायद ही समकालीन यथार्थ का कोई ऐसा पक्ष हो, जो उपन्यास की संवेदनशील पकड़ से छूट गया हो।”¹

पिछली आधी सदी में गाँवों की वास्तविक जिन्दगी और उसमें आये बदलाव, स्त्री की परम्परागत दुःखभरी दास्तान, उसके रूपान्तरण तथा सबलीकरण की प्रक्रिया, दलितों की नरक तुल्य जिन्दगी और उनके उठ खड़े होने की सच्चाई, समाज के पिछड़े वर्ग का विद्रोह, मध्य वर्ग का बहुरंगी यथार्थ, परिसर जीवन की विकृतियाँ, राजनीति के क्षेत्र में आई गिरावट, किसानों की आत्महत्या, साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र की बदसूरत वास्तविकता आदि हिन्दी उपन्यास में अपने यथार्थ रूप में दिखाई देते हैं।

भारत गाँवों का देश है। देश की लगभग सत्तर प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है। गाँव और किसानों की प्रकृति और जीवन शैली में बहुत कम वैविध्य है। उनकी जीविका का प्रमुख आधार खेतीबारी, जंगल, पहाड़, नदी, समुद्र आदि के गौण संसाधन होते हैं। आर्थिक दृष्टि से वह गरीब और सुख-सुविधाओं से वंचित होता है।

गाँवों की जिन्दगी में भी धीमी गति से ही सही लगातार बदलाव आ रहा है। भारतीय गाँव

एवं किसान के इस यथार्थ का चित्रण विगत पचास वर्ष के उपन्यास साहित्य का प्रमुख विषय रहा है। “नागार्जुन ‘रतिनाथ की चाची 1948’ से लेकर, संजीव (फॉस-2015) तक दर्जनों उपन्यासकारों ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में फैली विविधताओं एवं ग्रामीण एवं किसान जीवन के विविध पक्षों का अंकन किया है। इन उपन्यासकारों में कालाक्रमानुसार भैरवप्रसाद गुप्त, देवेन्द्र सत्यार्थी, फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीलाल शुक्ल, शैलेश मटियानी, राजेन्द्र अवस्थी, रामदरश मिश्र, विवेकी राय, गोविन्द मिश्र, मार्कण्डेय से लेकर शिवमूर्ति, महेश कटारे, संजीव जैसे वरिष्ठ कथाकारों से लेकर नव्यतम कथापीढी में अनेक ऐसे कथाकार हैं जो प्रेमचंद की कथा दृष्टि का आज के सन्दर्भ में विस्तार कर रहे हैं।”²

सातवें दशक में जिन उपन्यासकारों ने ग्रामीण अंचलों को अपने कथ्य के रूप में चुना उनमें शैलेश मटियानी, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, श्रीलाल शुक्ल आदि प्रमुख हैं। आजादी मिलने के बाद ग्रामीणों ने अपने सुखमय जीवन का एक स्वप्न देखा था, जिसकी अभिव्यक्ति भी छठे दशक के ग्रामीण एवं किसान जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों में हुई थी। ग्रामीण किसानों और खेतिहर मजदूरों ने समझा था कि आजादी के बाद जमींदारों और भूमिपतियों का शोषण और अत्याचार समाप्त हो जाएगा। उन्हें भी खेती और आवास के लिए जमीन प्राप्त होगी। शिक्षा, जीविका के साधन, बिजली, सड़क और स्वास्थ्य सुविधाएँ मिलेंगी। सरकारी कर्मचारी उनकी समस्या सुनने के लिए होंगे। आजादी की लड़ाई में उनका नेतृत्व करने वाले नेता देश के विकास कार्य में लग जाएंगे। पर ऐसा नहीं हुआ। दशक बीतते-बीतते यह सपना टूटने लगा था। विदेशी शासन और जमींदारी प्रथा का तो अंत हो गया, पर किसानों का सामंती और महाजनी शोषण थोड़े बदले रूप में बना ही रहा।

पुराने जमींदार, भूपति और महाजन वेश बदलकर राजनीति में शामिल हो गये और संसद, विधानसभाओं और सार्वजनिक संस्थाओं में प्रवेश कर जनता का पूर्ववत् शोषण करते रहे। सामुदायिक विकास योजना सरकारी तंत्र के भ्रष्टाचार के दलदल में डूब गयी और गाँव ज्यों के त्यों पिछड़े रह गये कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात के क्षेत्रों में विकास नाम मात्र का ही हो पाया। गाँव पूर्ववत् 'वैतरणी' बने रहे। मैदानी हिस्सों में बाढ़ और सूखा का प्रकोप पहले जैसा ही बना रहा। पर्वतीय अंचलों में विकास के नाम पर कुछ भी नहीं हुआ। जीविका की तलाश में इन क्षेत्रों से युवकों का नगरों में पलायन होने लगा। राजनीतिक चुनावों से राजनीतिक चेतना उतनी नहीं जगी जितनी जातिवाद, सम्प्रदायवाद और क्षेत्रवाद की भावना पनपी। गाँवों का परम्परागत ढाँचा बिखर गया।

किसानों की समस्याओं को अपने साहित्य के माध्यम से मजबूती प्रदान करने वाले नागार्जुन के लिए गाँव के मछुवारे वरुण के बेटे से लेकर प्राइमरी स्कूल के मास्टर दुखरन झा तक सभी किसान ही हैं। "यानी नागार्जुन की किसान कोटि ग्रामीण परिवेश की उत्पादकता की सभी शक्तियों को अपने में समाहित कर लेती है जिसमें छोटे किसान, खेत मजदूर और छोटे-मोटे पेशों वाले लोग शामिल हैं।

"पर हिन्दी में नागार्जुन की पहचान उनके उन उपन्यासों से बनती है, जो किसानों और कृषक मजदूरों के जीवन का चित्रण करते हैं। प्रेमचंद ने भी अपने उपन्यासों में किसानों की जिन्दगी का चित्रण किया था, पर प्रेमचंद से नागार्जुन की एक भिन्नता इस अर्थ में है कि प्रेमचंद ने मुख्यतः वैसे किसानों की भाग्यगाथा प्रस्तुत की, जिनके पास थोड़ी बहुत जमीन थी, जबकि नागार्जुन के किसान भूमिहीन और बंधुआ मजदूर के रूप में एक अभिशप्त जिन्दगी जीते थे।"³

'रतिनाथ की चाची' (1948) से ही नागार्जुन जमींदारों द्वारा किसानों की बेदखली, जमींदारों के विरुद्ध किसानों के संघर्ष आदि का चित्रण आरम्भ कर देते हैं; पर यहाँ उस सम्भावना का संकेत मात्र मिलता है जो बलचनमा (1952), बाबा बटेश्वरनाथ (1954) और वरुण के बेटे आदि में अपने वास्तविक रूप में सामने आती है। "बलचनमा में मिथिलांचल के ग्रामीण जीवन का कटु और नग्न यथार्थ अपनी सम्पूर्ण प्रखरता में चित्रित हुआ है। बलचनमा, सम्पूर्ण निम्न वर्ग का प्रतीक है।"⁴

यह ग्रामीण निम्न वर्ग सदियों से जमींदारों के शोषण और दमन का शिकार है, जिसके सदस्यों से, जिनमें बच्चे और स्त्रियाँ भी शामिल हैं, जमींदार उसी प्रकार काम लेता है जैसे अपने पालतू पशुओं से। बलचनमा एक ऐसे परिवार का सदस्य है, जिसमें सबके सब मजदूर ही हैं। उसकी माँ और बहन और बचपन से ही वह खुद, जमींदार के यहाँ वास्तविक जीवन की एक सच्चाई थी, का चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों में नहीं मिलता।

'बाबा बटेश्वरनाथ' उपन्यास में 'हिजरी सन् 1280' के अकाल की उन्होंने बहुत विस्तार से चर्चा की है और बताया है कि इसका सीधा असर किस तरह गरीब के पेट पर पड़ता है; "पाँच जने अगर खाने वाले हुआ करते तो ईंट का एक सेर पिसान दो सेर उबली-पत्तियों में मिलाया जाता, कहीं यह पिसान पत्तियों में एक चौथाई भर डाला जाता। आम की गुठलियों का पिसान भी इसी तरह बरता जाता।"⁵ दूब और पेड़ों की छाल तक का इस्तेमाल हुआ भूख से लड़ने के लिए। इससे काम नहीं चला और बहुत से किसान अकाल की भेंट चढ़ गये।"⁶

नागार्जुन की नजर आपदाओं की आड़ में चलने वाली लूट-खसोट और भ्रष्टाचार पर भी है। वे राहत और बचाव कार्य के नाम पर नेताओं-अफसरों द्वारा की गयी लूट खसोट की

भी पड़ताल करते हैं। कहना गलत न होगा कि यह भी एक तरह की मानव निर्मित आपदा है जो प्राकृतिक आपदा से कम भयावह नहीं है। 'बलचनमा' उपन्यास में 1934 के भूकम्प के बाद चलाए गये राहत कार्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण गरीब किसानों को दोहरी मार झेलनी पड़ती है। प्रसंगवश आजादी के अरसठ साल बाद भी भारतीय किसान कमोवेश इन समस्याओं से जूझ रहा है, यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। वह आज भी भूख और भ्रष्टाचार से क्या पूरी तरह मुक्त हो सका है ?

किसानों के सशक्त प्रतिरोध का बड़ा दिलचस्प नमूना 'वरुण के बेटे' उपन्यास में दिखाई देता है। गढ़पोखर के जल से मछुओं का रिश्ता भावनात्मक है जिसे गोनड़ (एक बूढ़ा मछुआ) इस प्रकार व्यक्त करता है— "यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हाल में इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिकी है न बिकेंगे। गरोखर (गढ़पोखर) का पानी मामूली पानी नहीं है। वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिनगी का निचोड़ है।"⁷

"फणीश्वरनाथ रेणु" और उनके साहित्य की जब भी चर्चा होती है, तब गाँव उसका केन्द्रीय विषय होता है। 'रेणु ने अपने बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' में मेरीगंज नामक एक गाँव को केन्द्र में रखा है, और उसकी कहानी लिखी है। लेकिन वह भारत के लगभग छः लाख गाँवों की कहानी भी है। इसीलिए 'मैला आँचल' आज भी कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है; प्रासंगिक है।"⁸

आज भी हम यदि भारतीय कृषक जीवन का गम्भीर अध्ययन मार्क्सवादी दृष्टिकोण के साथ करना चाहेंगे, तो 'गोदान' (प्रेमचंद) और 'मैला आँचल' को सामने रखना ही होगा। 'गोदान' भारतीय किसान जीवन की महागाथा है और उसकी अगली कड़ी है; 'मैला आँचल' अर्थात् मैला

आँचल भारतीय किसान जीवन की महागाथा का दूसरा अध्याय या परिवर्तन है।

नाम पूछने के बाद ही लोग यहाँ पूछते हैं जात ? जीवन में बहुत कम लोगों ने प्रशांत से उसकी जाति के बारे में पूछा है लेकिन यहाँ तो हर आदमी पूछता है....."जाति बहुत बड़ी चीज है। जात-पात नहीं मानने वालों की भी जाति होती है.....शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना। लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका पानी नहीं चल सकता।"⁹

रेणु को गाँव के इस गलीजपन का पता है और इसीलिए वह जिस नायक को मेरीगंज में लाते हैं वह जातिहीन है..... रेणु किसान जीवन के किसी एक आयाम को नहीं दर्शाते। आप निश्चित तौर पर यह बतला नहीं सकते कि यह बलदेव के साथ खड़े हैं या कि कालीचरन के साथ; बावनदास से लेकर चलित्तर कर्मकार तक उनके यहाँ हैं। लुत्तों हैं, तो जित्तन भी और फिर हीरामन और मृदंगिया भी।

रेणु की माने, तो भारतीय लोकतंत्र और सामाजिक न्याय के विकास की लकीरें गाँवों से होकर गुजरेंगी। लोकतंत्र के साथ अग्रसर विकास यदि सम विकास के आदर्श पर नहीं हुआ तो फिर चलित्तर कर्मकार (आज कहे माओवाद) को हम नहीं रोक सकते। रेणु ने गम्भीर मुद्दों पर इशारा कर दिया है, वह आज भी विचारणीय है।

प्रेमचंद, नागार्जुन और रेणु के बाद 'जगदीश चंद्र' गाँव के अनुभव से गहरे जुड़े हुए कथाकार हैं मैक्सिकन उपन्यासकार कार्सोस फुएन्ते ने कहा है कि— "इतिहास जिनकी हत्या करता है, कला उनको जीवन देती है। इतिहास जिनकी आवाज सुनने से इन्कार करता है, कला में उनकी आवाज सुनाई देती है।" (नया ज्ञानोदय अंक 105, राहुल सिंह का लेख)। जगदीश चंद्र गाँव के उन लोगों की बात उठाते हैं जिनकी

विशेष साजिश से आर्थिकता तबाह कर दी गयी या की जा रही है।

“धरती धन न अपना” उपन्यास दो गाँवों की कहानी है। जिस तरह प्रेमचंद के उपन्यास ‘गोदान’ को रंगभूमि उपन्यास से ज्यादा ख्याति मिली उसी तरह जगदीशचंद्र के उपन्यास ‘धरती धन न अपना’ उपन्यास को ‘मुट्ठी भर काँकर’ उपन्यास से ज्यादा ख्याति प्राप्त हुई है। ‘मुट्ठी भर काँकर’ उपन्यास में नगर विस्तार पा रहे हैं, कालोनियों के विस्तार और विकास के लिए किसानों से उपजाऊ जमीन कौड़ियों के भाव खरीदी जा रही है, दलाल वर्ग खूब धन कमाने की जुगाड़ में हैं।¹⁰

ग्रामीण सामाजिक परिवेश तथा उसके जीवन-मूल्यों को यथार्थ रूप में चित्रांकित करने वाले अग्रणी कथाकारों में विवेकी राय एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जिसको गाँव की गहरी समझ तो है ही, गाँव के प्रति उसके मन में अटूट लगाव भी है। उनके ग्राम एवं किसान जीवन के चित्रण के लिए चर्चित उपन्यास है— ‘सोना माटी’, ‘बबूल’, ‘लोकऋण’ समरशेष और ‘नमामि ग्रामम्’ जो बदलते गाँवों को पूरी विश्वसनीयता के साथ चित्रित करते हैं।

“बबूल” उपन्यास मजदूरों के साथ विभिन्न रूपों में होने वाले अत्याचार, अन्याय, शोषण आदि के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों के यथार्थ स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाली एक सशक्त कृति है। विवेकी राय की उपन्यास कला का वास्तविक रूप उनके सोना माटी, ‘समरशेष’ है और ‘मंगल भवन’ जैसे महाकाव्यात्मक प्रभाव वाले उपन्यासों में देखे जा सकते हैं। गाँव विवेकी राय का आराध्य है और उसी के सूत्र से ‘मंगल भवन’ में उन्होंने राष्ट्र देवता की पहचान कराने का प्रयास किया है।¹¹

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि उद्योग है— “जमींदार जो मूलतः सरकारी प्रतिनिधि समझे जाते थे आंग्ल प्रशासन द्वारा उस

भूमि के स्वामी घोषित कर दिये गये जिससे वे कर वसूलते थे। अंग्रेजों की अभिरुचि कम से कम विरोध का सामना करते हुए अधिक से अधिक धन प्राप्त करने में थी।.....इससे परम्परागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था विघटित हुई तथा भूमि पर पराश्रयी हितों का विकास हुआ.....।”¹²

इस विवेचन से लक्षित होता है कि आजादी के बाद के हिन्दी उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण जीवन का अंकन उसके अनेक आयामों के साथ हुआ है। इस सन्दर्भ में जो विशेष बात सामने आई है वह यह है कि गाँव का दलित और स्त्री वर्ग अपने अधिकारों की लड़ाई में आगे बढ़ रहे हैं, लेकिन किसानों की स्थिति में कोई विशेष बदलाव आजादी के बाद नहीं आया, उनके शोषण का तरीका भर बदल गया है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों तक बिजली, सड़क, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उतनी पहुँच नहीं है। यह चिंता का विषय है। पहले जमींदार साहूकार के कर्ज से किसान परेशान थे अब बैंकों के कर्ज से आत्महत्या कर रहे हैं।

कई उपन्यासकारों के यहाँ तो भूमि समूची चेतना का केन्द्र बनी हुई है। उसी को लेकर मुख्य पात्रों का सृजन और वाचन हुआ है। भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासों में तो भूमि युद्ध क्षेत्र की तरह विशेषकर ‘धरती; सती मैया का चौरा’ और ‘गंगा मैया’ में भूमि समस्या की व्यापक चर्चा है, जबकि ‘आधा-गाँव’ में जमींदारी उन्मूलन के बाद उत्पन्न नयी स्थितियों के कारण पुराने जमींदार पागलपन की सीमा पारकर चुके हैं। श्रीलाल शुक्ल ने तो ‘राग-दरबारी’ में गाँव को व्यंग्य और विद्रूप का ऐसा केन्द्र बनाया है, जहाँ आजादी के बाद सिर्फ लूट-खसोट और बेईमानी ही शेष रह गयी है। रोशनी की कोई तलाश वहाँ नहीं है।¹³

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की समस्याएँ बदलने लगीं। देश का यथार्थ नये रूप में सामने आया। स्वतन्त्रता के पूर्व की कहानी इस

नवयथार्थ और नव परिवेश को पकड़ने में सक्षम रही है। देश की समस्याओं जटिलताओं और यथार्थ की भयावहता को नयी पीढ़ी के कहानीकारों ने भोगा और समझा तथा अपनी कहानियों में प्रतिबद्ध किया।

हिन्दी कहानी ने भारतीय जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित किया। 'एक ओर जहाँ हिन्दी में कहानियों और कहानीकारों की भारी बाढ़ आई, 'नयी कहानी' ने अपना मर्यादित स्थान बना लिया और आधुनिक साहित्य की केन्द्रीय विधा के रूप में चर्चित होने लगी। शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, अमरकांत, रेणु, शैलेश मटियानी, पानू खोलिया, भैरव प्रसाद गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, रांगेय राघव, रामदरश मिश्र और केशव चंद्र मिश्र आदि नये पुराने सशक्त हस्ताक्षर नये क्षितिज पर उगे अवश्य पर इनमें से कुछ को छोड़कर शेष कभी-कभी ही गाँवों की ओर जाने वाले लगते हैं। कुछ लोग बहुत दूर जाकर और गहरी लीक बनाकर भी नगर-बोध के गहरे आकर्षण में खिंच आये।'¹⁴

ग्राम कथा कोई आकस्मिक वस्तु नहीं है और न यह अस्थायी कथा प्रवृत्ति है। आजादी के बाद गाँवों में धीरे-धीरे परिवर्तन हुए। स्वातन्त्र्योत्तर कथाकारों ने गाँवों में घटित होने वाले परिवर्तनों को सूक्ष्म दृष्टि से परखा और अपनी कहानियों में चित्रित किया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् परिवर्तन केवल शहरों में ही नहीं हुए, गाँवों में भी हुए। पंचवर्षीय योजनाओं, जमींदारी उन्मूलन, विज्ञान की प्रगति, लघु कुटीर, उद्योगों, औद्योगिक विकास, सिंचाई सम्बन्धी साधनों, यातायात सम्बन्धी सुविधाओं, गाँव से लेकर देश तक होने वाले चुनावों तथा युद्ध की विभीषिकाओं का प्रभाव गाँवों एवं किसानों पर पड़ा। शहरों की तरह गाँव भी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से आक्रांत है।¹⁵

राजेन्द्र अवस्थी की 'एक प्यास पहेली' कहानी आदिवासियों के परिवेश को लेकर लिखी गई है। आज भी गाँव के लोग अंधविश्वासों और धर्मान्ध हैं। पुरानी रूढ़ियों से वे अभी भी मुक्त नहीं हो पाए हैं।'¹⁶ 'शव साधना' (मार्कण्डेय) कहानी में ऐसे साधुओं के आडम्बरों और कुकृत्यों का पर्दाफाश किया है। शिव प्रसाद सिंह की 'रेती' कहानी गाँवों में व्याप्त सड़ी-गली रूढ़ियों को उजागर करती है।

'शिव प्रसाद सिंह' भी मूलतः ग्राम-चेतना के कहानीकार हैं। आपने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के ग्रामीण जीवन के यथार्थ को मानवीय दृष्टि से देखा है। 'आर पार की माला' (1955), 'कर्मनाशा की हार', 'इन्हें भी इन्तजार है' (1961), 'मुरदा सराय' (1966), 'भेड़िये' (1977) प्रकाशित हैं। आपने प्रायः उपेक्षित, शोषित, दलित और पीड़ित ग्रामीण जनों को केन्द्र में रखकर अपनी कहानियों की रचना की है। आपने आज के परिवेश में गाँवों की अच्छाई-बुराई दोनों को देखा है और अपने लिए 'रेणु' से भिन्न स्वतन्त्र मार्ग का निर्माण किया है।'¹⁷

मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला' नयी कहानी दौर की एक चर्चित कहानी है। इसमें निश्चय ही एक आम किसान के अकेले होते जाने की कथा है, यह अकेलापन एक सामाजिक यथार्थ के रूप में सामने आता है। आजादी के बाद किसानों का यह सपना टूट गया था कि अब उनका 'राष्ट्र' अपना होगा। वह मुखौटा बन गया और चुनाव की राजनीति भोले-कृषकों को किस तरह अपना शिकार बना रही थी, हंसा का अकेलापन आजादी के बाद की इन सच्चाइयों का पर्दाफाश करता है।

मार्कण्डेय यहाँ एक बहुत बड़ा सामाजिक यथार्थ उजागर करते हैं— 'छोटी जात का कोई राम नहीं बन पाता है।' वे एक बड़ी लड़ाई के भीतर से सामाजिक भेदभावों को तो पहचानते ही हैं, यह भी संकेत देते हैं कि ग्रामीण जीवन के

छोटे-छोटे सांस्कृतिक रूपों के भीतर से भी क्रांतिकारी अभिव्यक्तियाँ जन्म ले सकती हैं।¹⁸

हिन्दी पट्टी के किसान आजादी के बाद के मोहभंग के सबसे ज्यादा शिकार हुए। इन तक सुधार और विकास पहुँच नहीं पाये। ये पंजाब के किसानों की तरह सुखी और आन्ध्र प्रदेश, बंगाल के किसानों की तरह संगठित नहीं हो पाये। गाँव में अब भी शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण संस्थाओं हेतु पूरा प्रयास नहीं हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में जितनी साक्षरता थी आज उससे तीन गुना ज्यादा साक्षरता है, लेकिन इसके बावजूद कुल जनसंख्या का लगभग एक तिहाई भाग निरक्षर है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री असर्त्य सेन के सिद्धान्त के अनुसार “अकाल और सूखे का सम्बन्ध लोकतंत्र के अभाव को दर्शाता है।¹⁹ इससे हम इस बात को भी समझ सकते हैं कि जिस लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की गई है, वह लोकतंत्र भी गाँवों, किसानों, दलितों, मजदूरों और अल्पसंख्यकों तक छन-छनकर ही पहुँच पाता है। गाँव पर आज उन वर्गों का नियंत्रण है, जिनके पास जमीन और धन की ताकत है इसके बल पर वे राजनीतिक सत्ता हथियाने में कामयाब हो जाते हैं। उनकी कोशिश होती है कि गाँव के लोग गैरलोकतांत्रिक, सामंती और धार्मिक, रूढ़िवादी विचारों और मूल्यों में ही जकड़े रहे ताकि उनका शोषण और उत्पीड़न बिना किसी तरह के प्रतिरोध और संघर्ष के निरंतर चलता रहे।

“हमारी ग्रामीण व्यवस्था पर आज भी जमींदार, साहूकार और भूस्वामी वर्ग का दबदबा कायम है। भूमि सुधारों का अभाव, बेगार प्रथा, खेत मजदूरों का शोषण, उनकी उपज की कम कीमत देना, आधुनिक मशीनों के इस्तेमाल द्वारा उन्हें रोजगार और व्यवसाय से वंचित करना। किसानों के कर्ज तले दबकर आत्महत्या करना। गरीब और निम्नवर्ग की स्त्रियों के साथ बलात्कार

और जमींदारों और किसानों में संघर्ष हमारे ग्राम्य एवं किसान जीवन की कटु वास्तविकताएं हैं। जब तक शोषण और उत्पीड़न की यह व्यवस्था हमारे देश में कायम है तब तक गाँव का किसान खुशहाल और शांति का जीवन कैसे बिता सकता है। हमारी ग्रामीण व्यवस्था अब भी शोषकों और उत्पीड़कों से त्रस्त है और उनके प्रति संघर्ष जारी है जो हर स्तर पर जारी रहना चाहिए।²⁰

आज भी भारत की बहुसंख्यक आबादी गाँवों में रहती है और वैश्वीकरण, औद्योगीकरण की सारी कोशिशों के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था की बुनियाद ग्रामीण अर्थव्यवस्था ही है। लेकिन हमारी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चिन्ताओं से इस ग्राम्य व्यवस्था को भुलाया जा रहा है।

ऐसा लगता है कि आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व प्रेमचंद ने किसानों की बदहाली पर कलम चलाते हुए ‘गोदान’ की रचना की। सौ सासल बाद भी गाँव और किसानों की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है। जब भी गाँव किसान की बात की जाती है, तो प्रेमचंद के साहित्य में वर्णित गाँव किसान की याद आती है और यह सोचने के लिए हम विवश हो जाते हैं, कि क्या गाँव और किसानों के बारे में कुछ सोचा जा रहा है या सिर्फ बातें की जा रही हैं।²¹

प्रेमचंद का कथा-साहित्य सच्चे अर्थों में तत्कालीन समाज का अमूल्य दस्तावेज है और आज भी अधिकांशतः उसी रूप में सार्थक व प्रासंगिक है क्योंकि स्वातंत्र्योत्तर काल का ग्रामीण समाज भी लगभग वही है। समाज की जो चिन्तायें स्वतन्त्रता पूर्व थीं आज और भी वीभत्स रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं। हालांकि पिछले दो-ढाई दशक से समाज वहीं का वहीं नहीं है। तीव्रता से बदल रहा है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गाँवों में भी परिवर्तन हुए हैं— “पंचवर्षीय योजनाओं, जमींदारी उन्मूलन, विज्ञान की प्रगति, लघु कुटीर उद्योग,

औद्योगिक विकास, सिंचाई सम्बन्धी साधनों, यातायात सम्बन्धी सुविधाओं, गाँव से लेकर देश तक होने वाले चुनावों तथा युद्ध की विभीषिकाओं का प्रभाव गाँवों पर पड़ा है।²² बदलती हुई परिस्थितियों से कई परिवर्तन हुए हैं— स्वतन्त्रता के इतने लम्बे समय के बाद भी गाँव के छोटे, सीमांत किसान, मजदूर, सामंती व्यवस्था एवं जमींदारों और राजनैतिक कुचक्र से उत्पीड़ित है। “सरकारी तंत्र गाँव के निर्धनों के लिए अब भी एक अभिशाप के रूप में विद्यमान है।”²³ आर्थिक संकट एवं मंदी के साथ महँगाई ने आम ग्रामीण तथा किसान की कमर तोड़ के रख दी है। सम्बन्धों में स्वतन्त्रता पूर्व जैसी प्रगाढ़ता नहीं रह गयी है। मानवीय मूल्यों में दिनों-दिन हास हो रहा है। सम्बन्ध दिन प्रतिदिन शिथिल होते जा रहे हैं। बेरोजगारी और आर्थिक संकट ने परिवारों को छिन्न-भिन्न कर दिया है। नये कथाकारों ने भी स्वतंत्रता पूर्व के कथाकारों यानी प्रेमचंद की परम्परा को बनाये रखने का प्रयास करते हुए, ग्रामीण जीवन परम्परा को बनाये रखने का प्रयास करते हुए, ग्रामीण जीवन की संवेदनाओं और यथार्थ को तनावों और द्वन्द्वों को सहज रूप में चित्रित किया है।

“ग्रामीण जीवन के कथाकारों ने उपेक्षित प्राणियों की संवेदनाओं, विषमताओं, पीड़न और शोषण को अपनी कथाओं में चित्रित किया है। रामदरश मिश्र की “एक वह” कहानी इस बात का द्योतक है कि न जाने कितने भूमिहीन कृषक रोजी-रोटी ढूँढने, मजदूरी करने गाँव से शहर आते हैं। गाँवों में जाति-संघर्ष है अवश्य लेकिन यह प्रचुरता के साथ देखने को नहीं मिलता है। गाँव में निम्न वर्ग वाले इस समय भी सवर्णों से दबे हुए हैं। आज भी पुराने जमींदारों, सामंतों, रईस ठाकुरों द्वारा दलितों और पिछड़ी जाति वालों पर अत्याचार, दमन, शोषण एवं अन्याय होता है।”²⁴

स्वतन्त्रता के बाद गाँव का किसान भी अब चतुर एवं सजग हो गया है। वह सरकार द्वारा लागू योजनाओं एवं कार्यक्रमों के विषय में अपने हितों का ध्यान रखते हुए सोचने लगा है। उनकी दृष्टि यथार्थपरक हो गयी है। गाँव के भूमिहीन मजदूरों में आर्थिक चेतना विकसित हो रही है। मधुकर सिंह की कहानी— “पंचायती परमेसरों का दुःख” में गाँव के मजदूर उचित पारिश्रमिक के अभाव में शहर में मजदूरी करने लगे हैं।²⁵

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हैं कि हिन्दी कथा साहित्य में गाँवों और किसानों के जीवन को लेकर लिखा जाने वाला साहित्य धीरे-धीरे कम होता गया, क्योंकि लेखक शहरी परिवेश में पूरी तरह बस गये। आज ज्यादातर हिन्दी लेखक नहीं जानते कि गाँव में क्या घट रहा है और किस प्रकार घट रहा है। गाँव में कितनी मृत्यु हुई, उसका कारण क्या है। कितनी गरीबी, कितने तरह के तनाव हैं, गरीबों एवं किसानों का शोषण किस तरह से हो रहा है। भारत के सत्तर प्रतिशत ग्रामीण समाज की सच्चाइयाँ साहित्य के पन्नों पर नहीं हैं या बहुत कम देखने को मिलती हैं। वे अखबार के पन्नों पर होती हैं, पर साहित्य में बहुत कम। ऐसी स्थिति में उपरोक्त प्रेमचंद युगीन से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक के कथाकार जिनके कथा-साहित्य की चर्चा की गई है, यह बताता है कि गाँव और किसानों पर लिखा जाना कितना आवश्यक है क्योंकि आज भी गाँवों और किसानों की स्थितियों में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं हुए हैं। किसान आत्महत्या कर रहा है, आज वह तबाही के कगार पर खड़ा है। इसलिए साहित्य में किसानों की त्रासदी से दूरी और भी चिंतनीय है।

- 1 हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रो० गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृ० 399
- 2 हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रो० गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृ० 400
- 3 हिन्दी उपन्यास का इतिहास, प्रो० गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2013, पृ० 217
- 4 'बलचनमा', नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृ० 43
- 5 'बाबा बटेश्वरनाथ', नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृ० 66
- 6 अभिनव कदम-27, सम्पादक-जयप्रकाश धूमकेतु, जून-2012, नवम्बर-2012 पृ० 440
- 7 'वरुण के बेटे', नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृ० 58
- 8 'कथादेश', मई-2012, सम्पादक-हरिनारायण, अतिथि सम्पादक-सुभाष चंद कुशवाहा, सहयात्रा प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली, पृ० 101
- 9 वही, पृ० 49
- 10 जगदीशचंद्र रचनावली, सम्पादक विनोद शाही, खण्ड-2, पृ० 334, 1999
- 11 हिन्दी कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ, डॉ० गजाधर प्रसाद शर्मा, त्रिभुवन प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण -2012, पृ० 58, 59
- 12 रामदरश मिश्र के उपन्यास : चेतना के स्वर, डॉ० गुंजन पी० वैश्य, ब्राइट बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012, पृ० 187
- 13 'कथा' अंक-15, मार्च-2011, मार्कण्डेय स्मृति अंक, सम्पादक, सस्या, पृ० 228
- 14 हिन्दी कहानी समीक्षा और सन्दर्भ, डॉ० विवेकी राय, एकता प्रकाशन, इलाहाबाद-1999, पृ० 179
- 15 हिन्दी कहानी समीक्षा और सन्दर्भ, डॉ० विवेकी राय, एकता प्रकाशन, इलाहाबाद-1999, पृ० 180
- 16 'एक प्यास पहेली' (कहानी)- राजेन्द्र अवस्थी, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, संस्करण-1966, पृ० 17
- 17 हिन्दी का गद्य साहित्य- डॉ० रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011, पृ० 314
- 18 कथा-साहित्य अंक, मार्च-2011, सम्पादक-सस्या, पृ० 329
- 19 अभिनव कदम-27, जून-नवम्बर-2012, सम्पादक-जयप्रकाश धूमकेतु, पृ० 357

- 20 प्रेमचंद का रचना संसार (पुनर्मूल्यांकन), डॉ० सुशीला गुप्ता, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा प्रकाशन, मुम्बई, प्रथम संस्करण—, पृ० 180
- 21 अभिनव कदम—27, जून—2012, नवम्बर—2012, किसान विशेषांक—2, सम्पादक—जयप्रकाश धूमकेतु, पृ० 361
- 22 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ग्राम जीवन और संस्कृति, डॉ० राजेन्द्र कुमार, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, संस्करण—1988, पृ० 118
- 23 डॉ० राजेन्द्र कुमार— स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ग्राम जीवन और संस्कृति, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण—1988, पृ० 119
- 24 डॉ० राजेन्द्र कुमार— स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ग्राम जीवन और संस्कृति, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण—1988, पृ० 122
- 25 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ग्राम जीवन और संस्कृति, डॉ० राजेन्द्र कुमार, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण—1988, पृ० 236